माखन लाल गोकुल चंद

वी.

प्रशासक, संघ क्षेत्र दिल्ली और ए. एन. आर.

नवंबर 2,1999

[डॉ. ए. एस. आनंद, सी. जे., जी. टी. नानावती, के. टी. थॉमस, डी. पी. वाधवा और एस. राजेंद्र बाबू, जे. जे.]

निवारक निरोधः

विदेशी मुद्रा संरक्षण और तस्करी गतिविधियों की रोकथाम अधिनियम, 1974/सामान्य खंड अधिनियम, 1897 ।11/एस ।21-नजरबंदी का आदेश-- तीन बार चुनौती दी गई-- चुनौती हर बार विफल रही-- चौथी बार चुनौती दी गई-- संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इस आधार पर दायर की गई याचिका खारिज कर दी गई कि राज्य सरकार चौथे प्रतिनिधित्व पर विचार करने के लिए एक नए सलाहकार बोर्ड का गठन करने में विफल रही-- "नए आधार", "नई सामग्री" या किसी भी "बाद की घटना" के अभाव में, राज्य पर नए सलाहकार बोर्ड द्वारा प्रतिनिधित्व पर विचार करने का कोई दायित्व नहीं था, और इसलिए, प्रतिनिधित्व को अस्वीकार करने और "नए" सलाहकार बोर्ड का गठन नहीं करने में राज्य द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग ई दोषपूर्ण नहीं हो सकता-- चौथे प्रतिनिधित्व को बिना किसी नए कारण के उपलब्ध कराए चौथे प्रतिनिधित्व को स्पष्ट रूप से एक और रिट याचिका दायर करने के लिए डिज़ाइन किया गया था।

मूल आपराधिक न्यायनिर्णयःलेखन याचिका (सी. आर. एल.) 1983 का सं. 608।

(भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत)

याचिकाकर्ता की ओर से हरजिंदर सिंह, सुश्री रानी जेठमलानी, सुश्री गौरी करुणा दास और सुश्री जी लीना प्रसाद।

उत्तरदाताओं के लिए सुश्री रेखा पांडे।

न्यायालय का निम्नलिखित आदेश दिया गया थाः

27 सितंबर, 1983 को इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने राम बाली राजभर बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य, [1975] 3 एस. सी. आर. 63 के मामले में की गई 'व्यापक टिप्पणियों' की शुद्धता पर संदेह व्यक्त किया और यह राय व्यक्त की कि पुष्प बनाम भारत संघ और अन्य, ए. आई. आर. (1979) एस. सी. 1953 में व्यक्त किया गया विचार राजभर के मामले (उपरोक्त) के फैसले के अनुरूप था।पीठ ने यह देखते हुए कि बंदी बी को 15 दिसंबर, 1982 के आदेश द्वारा लगाए गए 12 महीने की अवधि में से 10 महीने की अवधि के लिए पहले ही हिरासत में रखा गया था, बंदी को पैरोल पर रिहा करने का निर्देश दिया।

याचिकाकर्ता की ओर से पेश हुए विद्वान वकील श्री हरजिंदर सिंह ने हमें राजभर के मामले और पुष्पा के मामले (ऊपर) के फैसलों के बारे में बताया है। सी, हालांकि, दोनों निर्णयों के सावधानीपूर्वक अवलोकन से पता चलता है कि दोनों के बीच कोई टकराव नहीं है।राजभर के मामले (ऊपर) में व्यक्त विचार, हमारी राय में, सही कानून निर्धारित करता है और किसी भी पुनर्विचार की आवश्यकता नहीं है।जहाँ तक पुष्प के मामले (ऊपर) में व्यक्त विचार का संबंध है, यह ध्यान देने योग्य है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने छुट्टी के दौरान याचिका का निर्णय लेते हुए ऐसा कुछ नहीं कहा जिसे राजभर के मामले (ऊपर) में व्यक्त विचार के विपरीत माना जाए।तथ्यों पर उस मामले में यह पाया गया कि निरोध के आदेश के खिलाफ बंदी द्वारा दो अभ्यावेदन किए गए थे और दोनों अभ्यावेदन एक ही सलाहकार बोर्ड के समक्ष रखे गए थे जब बोर्ड की बैठक हुई और बोर्ड ने उस बैठक में अभ्यावेदन पर विचार किया।उस ई मामले में उठाया गया तर्क कि दूसरे अभ्यावेदन पर एक सलाहकार बोर्ड द्वारा विचार नहीं किया गया था, इस प्रकार तथ्यों पर, वैध नहीं पाया गया।अदालत ने उन परिस्थितियों में इस तर्क की जांच करने से इनकार कर दिया कि क्या सलाहकार बोर्ड के समक्ष अपने मामले की व्याख्या करने के लिए हिरासत में लिए गए व्यक्ति की व्यक्तिगत उपस्थिति, क्योंकि उसने विस्तृत लिखित अभ्यावेदन दायर किया था, हिरासत में लिए गए व्यक्ति के किसी भी अधिकार का उल्लंघन करता है।

पक्षों की ओर से पेश विद्वान वकील राजभर के मामले और पुष्पा के मामले के बीच संघर्ष के किसी भी क्षेत्र को इंगित करने में असमर्थ रहे हैं।विद्वान वकील के प्रति निष्पक्षता में यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि उन्होंने प्रस्तुत किया कि संदर्भ का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है।हम सहमत हैं।

हालाँकि, वर्तमान मामले के तथ्यों पर आते हैं।यह पाया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा निरोध के आदेश के खिलाफ अभ्यावेदन किए गए थे, जिन पर निरोध प्राधिकरण और सलाहकार बोर्ड द्वारा विचार किया गया था।अभ्यावेदन खारिज कर दिए गए।निरोध के आदेश और अस्वीकृति के आदेश या अभ्यावेदन को रिट याचिका संख्या 6/एच 362 के माध्यम से चुनौती दी गई थी।

1983, जिसे दिल्ली उच्च न्यायालय ने 1 फरवरी, 1983 को खारिज कर दिया था।दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश को इस न्यायालय में विशेष अनुमति याचिका संख्या 379/1983 के माध्यम से चुनौती दी गई थी।विशेष अनुमति याचिका संख्या 379/1983 के साथ, एक और रिट याचिका, रिट याचिका (सी. आर. एल.) है। नं. 182/1983, भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत भी दायर किया गया था, जिसमें एक बार फिर हिरासत का वही आदेश जारी किया गया था जिसे बी दिल्ली उच्च न्यायालय ने बरकरार रखा था।विशेष अनुमति याचिका के साथ-साथ रिट याचिका को इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने 23 फरवरी, 1983 को खारिज कर दिया था।इसके बाद याचिकाकर्ता ने एक और रिट याचिका दायर की जो रिट याचिका (सी. आर. एल.) थी। नहीं. 363/1983 कुछ "अतिरिक्त आधारों" पर निरोध के आदेश को चुनौती देते हुए।उस रिट याचिका को भी इस न्यायालय द्वारा 27 अप्रैल, 1983 को खारिज कर दिया गया था।27 अप्रैल, 1983 को तीसरी रिट याचिका खारिज होने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने 7 मई, 1983 को कोफेपोसा की धारा 11 के साथ पठित सामान्य खंड अधिनियम की धारा 21 के तहत शक्तियों का आह्वान करते हुए पहले प्रतिवादी को एक अभ्यावेदन भेजा था। याचिकाकर्ता ने उनके प्रतिनिधित्व पर विचार करने के लिए एक नए सलाहकार मंडल के गठन का भी अनुरोध किया।23 मई, 1983 को याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व को दिल्ली डी प्रशासन द्वारा उचित विचार के बाद खारिज कर दिया गया था।यह चौथी रिट याचिका हिरासत के उसी आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसकी वैधता को पहले बरकरार रखा गया था जैसा कि ऊपर देखा गया है।बंदी की ओर से पेश श्री हरजिंदर सिंह ने कहा कि 7 मई, 1983 के अभ्यावेदन पर विचार करने के लिए एक नए सलाहकार बोर्ड का गठन करने में राज्य की विफलता ने निरोध के आदेश ई को खराब कर दिया।

अभिलेख को पढ़ने और पक्षकारों के विद्वान वकीलों को सुनने के बाद, हमारी राय है कि बंदी के लिए विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत किए जाने में कोई योग्यता नहीं है।जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, याचिकाकर्ता ने पहले भी तीन बार निरोध के आदेश को चुनौती दी थी और असफल रहा था।7 मई, 1983 को याचिकाकर्ता द्वारा दायर एफ अभ्यावेदन में, हम पाते हैं कि न तो कोई नई सामग्री रिकॉर्ड पर लाई गई थी और न ही बाद की किसी घटना को इंगित किया गया था जो बंदी द्वारा किए गए अभ्यावेदन पर 'नए सिरे से' विचार करने की आवश्यकता हो सकती है।यह केवल प्रतिनिधित्व की भाषा में परिवर्तन था।इसलिए, दिल्ली प्रशासन ने 23 मई, 1983 को याचिकाकर्ता को भेजे गए आदेश द्वारा 7 मई, 1983 के अभ्यावेदन को अस्वीकार कर दिया। चूंकि, 7 मई, 1983 के अभ्यावेदन में कोई "नया आधार" नहीं था और न ही कोई "नई सामग्री" या "बाद की घटनाएं" सामने लाई गई थीं, इसलिए राज्य पर उस अभ्यावेदन पर "नए सलाहकार बोर्ड" द्वारा विचार करने का कोई दायित्व नहीं था और इसलिए, प्रतिनिधित्व को अस्वीकार करने में राज्य द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग और एच द्वारा "नए" सलाहकार बोर्ड का गठन करने को गलत नहीं ठहराया जा सकता है।

बंदी के पास एम. एल. गोकुल चंद बनाम प्रशासक के रूप में दिल्ली का संघ क्षेत्र 363 था।

पहले से ही देखा गया, असफल रूप से हिरासत के एक ही आदेश को तीन बार चुनौती दी।7 मई, 1983 को उनके लिए कोई नया कारण उपलब्ध कराए बिना एक अभ्यावेदन तैयार करना, स्पष्ट रूप से एक और रिट याचिका दायर करने के लिए बनाया गया था।हम बंदी के इस रवैये को अस्वीकार किए बिना नहीं रह सकते।इस रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं है, जो विफल हो जाती है और इसके द्वारा खारिज कर दी जाती है।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने तब अंत में प्रस्तुत किया कि चूंकि बी बंदी पहले से ही दस महीने की अवधि के लिए हिरासत में था, पैरोल पर बढ़े जाने से पहले, उसे हिरासत की शेष अवधि से गुजरने के लिए वापस जेल नहीं भेजा जा सकता है।

याचिकाकर्ता को 15 दिसंबर, 1982 को दिए गए एक आदेश द्वारा हिरासत में लिया गया था, जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है।लगभग 10 महीने की अवधि तक हिरासत में रहने के बाद, उन्हें 27 सितंबर, 1983 को इस अदालत द्वारा पैरोल पर रिहा करने का निर्देश दिया गया था।अब 16 साल से अधिक समय बीत चुका है।हमारी राय में, इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, अब पैरोल के आदेश को रद्द करना और याचिकाकर्ता को लगभग दो महीने की हिरासत की शेष अवधि से गुजरने का निर्देश देना न्याय के हित में नहीं होगा।डी.

इसलिए, हम रिट याचिका को खारिज करते हुए निर्देश देते हैं कि बंदी को अब हिरासत की शेष अवधि से गुजरने के लिए हिरासत में लेने की आवश्यकता नहीं है।

आर. पी.

याचिका खारिज कर दी गई।ई.